# सितंबर १९९४ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

## महावीर महाराज

लगभग दो हजार वर्षों के लंबे अंतराल के बाद भारत में जो पहला विपश्यना शिविर बंबई की पंचायती वाड़ी में लगा, उसके प्रबंधक श्री दयानंद अडुकिया थे। शिविर-संचालन के बारे में मैंने उन्हें अनेक सूचनाएं दी। साथ-साथ दैनिक समय-सारिणी भी बताई – जिसमें प्रातःकाल के नाश्ते, मध्याह्नपूर्व के भोजन और सायंकालीन चाय का समय निर्धारित था। मैंने उनसे कहा कि शिविर की सफलता के लिए साधकों को उचित समय पर उचित भोजन मिलना आवश्यक है। भोजन शुद्ध, सात्विक, सुरुचिकर तथा स्वास्थ्यप्रद हो। न विवाह-शादियों में बारातियों के लिए बननेवाला चटपटा और मेवे-मिष्ठान्न वाला भोजन हो, जिसे साधक अधिक मात्रा में खाकर ऊंघने लगें और न ही रोगियों के लिए बनने वाला बिना नमक की उबली सब्जियों का भोजन हो, जिससे मुँह मोड़ कर साधक भूखे रह जांय। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि भोजन समय पर तैयार हो जाना चाहिए। साधकों को प्रतीक्षा न करनी पड़े। श्री दयानंद ने मुझे आश्वासन दिया कि मैं इन दोनों बातों के लिए बिल्कुल निश्चिंत रहूं। उन्होंने कहा कि इस काम के लिए उनके पास एक ऐसा व्यक्ति है जो बहुत जिम्मेदार है और जरा भी शिकायत नहीं आने देगा। वह था महावीर महाराज।

शिविर आरंभ होने के दिन वह महावीर महाराज को मुझसे मिलाने के लिए ले आए। उसने भी मुझे आश्वासन दिया कि साधकों के लिए शुद्ध, सात्विक और सादा भोजन ठीक समय पर तैयार कर देने की उसकी जिम्मेदारी है। इस पर मैंने उससे यह भी कहा कि एक तो रसोईघर में स्वच्छता का ध्यान रखना आवश्यक है और दूसरे रसोईघर में काम करनेवाला कोई भी व्यक्ति वहां बीड़ी, सिगरेट न पिये। जिसे पीना हो, वह बाहर जा कर भले पी आए। महावीर महाराज ने यह आदेश भी पालन करने का आश्वासन दिया। उसने फिर दृढ़तापूर्वक कहा कि जहां तक भोजन का सवाल है, साधकों को शिकायत करने का कोई मौका नहीं मिलेगा। और यही हुआ। दसों दिन किसी भी साधक ने भोजन के बारे में जरा भी शिकायत नहीं की। सब को अच्छा भोजन मिला, समय पर भोजन मिला।

इस प्रकार पहले शिविर से ही महावीर महाराज विपश्यना से जुड़ गये और विपश्यना महावीर महाराज से जुड़ गयी।

१९७६ में हैदराबाद और इगतपुरी में स्थाई विपश्यना केंद्रों की स्थापना हुई। इसके पूर्व सात वर्षों तक स्थान-स्थान पर खानाबदोश शिविर ही लगते रहे। जहां केवल दस दिन का एक शिविर लगता, वहां तो शिविर के स्थानीय व्यवस्थापक स्वयं ही भोजन का प्रबंध करते। परंतु जहां लगातार अनेक शिविर लगते, उन शिविरों में अनिवार्यतः महावीर अपने सहायकों के साथ जा पहुँचता था। ऐसे शिविर अधिकतर बंबई, वाराणसी और बोधगया में लगते थे। इन शिविरों में शिविरार्थियों की संख्या १४ से आरंभ हो कर धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते १५०-२०० तक पहुँच गयी थी। परंतु महावीर ने अपने दायित्व में कभी कहीं कोई कमी नहीं आने दी। इन खानाबदोश शिविरों में बहुधा महावीर और उनके साथियों के निवास की सुविधा संतोषजनक नहीं होती थी। कहीं-कहीं तो शिविरार्थियों के निवास के लिए ही पर्याप्त सुविधा नहीं होती थी। ऐसी अवस्था में महावीर महाराज को अपने साथियों सहित तंबुओं में या घास की कुटियों में रहना पड़ता था। कभी-कभी बर्तन-भांडे की भी कमी पड़ जाती थी। परंतु महावीर इन असुविधाओं को झेलते हुए भी अपनी जिम्मेदारी कैसे निभा लेता था? वही जाने। वह कभी कोई शिकायत ले कर मेरे पास नहीं पहुँचा। मुझे स्वयं अपनी ओर से पहल करके शिविर-व्यवस्थापकों को उसकी सुविधा के लिए आदेश देना पड़ता था।

धम्मगिरि की स्थापना होने पर महावीर अपने परिवार सहित स्थाईरूप से इगतपुरी ही रहने लगा। धम्मगिरि का परिसर दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। धम्मसेवकों सहित साधकों की संख्या ३-४ सौ तो वर्ष भर ही बनी रहती थी, परंतु जाड़े के दिनों जब कि महीने-डेढ़ महीनों के शिविरों के साथ-साथ १०-१० दिन के शिविर भी चलते रहते तो यह संख्या ६-७ सौ तक भी पहुँच जाती थी। सब को आश्चर्य होता कि इतने लोगों के लिए समय पर भोजन कैसे बन जाता है! कितनी ही बड़ी संख्या क्यों न हो, सुबह ६:३० बजे नाश्ते की घंटी बजी हो या ११ बजे भोजन की घंटी बजी हो या सायंकाल ५ बजे चाय की घंटी बजी हो, एक दिन भी ऐसा नहीं था, जब कि साधकों का भोजन समय पर तैयार न हुआ हो। भोजनशाला में स्थान की कमी के कारण किसी-किसी को दूसरी खेप में बैठने की प्रतीक्षा भले करनी पड़े, परंतु भोजन तैयार न होने के कारण किसी को प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

शिविरार्थियों को रात का भोजन नहीं मिलता, परंतु जो १००-१५० धर्मसेवक सेवा में रहते थे, उनके लिए तो रात का भोजन भी बनता था। लोग आश्चर्य करते थे कि महावीर और उसके साथी कब सोते होंगे और सूर्योदय के कितने पहले उठ कर इतने लोगों का नाश्ता तैयार कर लेते होंगे! और सेवा का यह क्रम बारहों महीने चलता था। चाहे गर्मी हो, वर्षा हो या शीत हो। जैसे ही एक शिविर का समापन होता कि दूसरे दिन ही अगला शिविर आरंभ हो जाता।

इतने लोगों का भोजन बने और समय पर बने, इसका मतलब यह भी नहीं कि जल्दी-जल्दी में अधजली या अधपकी रोटियां सेंक दी गयीं हों या अन्य व्यंजन पकाने में बिगाड़ दिए गये हों। इतनी बड़ी तपोभूमि के रख-रखाव को लेकर कभी-कभी शिकायत भले आए, परंतु मुझे याद नहीं कि भोजनालय को ले कर कभी कोई शिकायत आयी हो।

इतने दिनों की धर्मसेवा में केवल एक अवसर ऐसा आया जब कि मुझे महावीर महाराज को डाटना पड़ा। परंतु फिर तुरंत ही पता चला कि इसमें उसकी कोई भूल नहीं थी। हुआ यह कि किसी शिविर में दलित वर्ग का एक युवक बहुत व्यथित हो कर मेरे पास यह शिकायत लेकर आया कि उसे अछूत मान कर भोजन परोसने

से रोक दिया गया। विपश्यना के शिविरों में जात-पांत के भेदभाव को नष्ट किया जाता है। सब एक साथ बैठ कर भोजन करते हैं। जो धर्मसेवक भोजन परोसते हैं उनमें भी ऊंच-नीच का जातिगत भेदभाव बिल्कुल नहीं रह पाता। अतः इस नियम का किसी ने उल्लंघन किया तो यह सचमुच बहुत बड़ा अपराध था। महावीर महाराज ऐसा करेगा, इसका विश्वास नहीं हो रहा था। महावीर महाराज ब्राह्मण परिवार में जन्मा, परंतु ब्राह्मण होने के नाते उसे रसोई का काम नहीं दिया गया था। इस काम में उसकी अद्भुत दक्षता थी, इसी कारण उसे यह काम सौंपा गया। इतने दिन साथ रहने के कारण वह इस बात को खूब जानता था कि विपश्यना में वर्ण या जाति को कोई महत्व नहीं दिया जाता, बल्कि वर्ण और जाति के भेदभाव-भरे राष्ट्रीय कलंक को दूर करने के लिए विपश्यना एक महत्वपूर्ण माध्यम है। फिर यह जानते हुए भी उसने ऐसा अपराध किया, अतः उसे बुला कर डाटा गया। तब उसने बताया कि इस युवक को परोसने से इसलिए नहीं रोका गया कि यह दलित वर्ग का है, बल्कि इसलिए रोका गया कि यह इसी शिविर में सम्मिलित हुआ नया साधक है और आप का यह स्पष्ट आदेश है कि किसी नये साधक को धर्मसेवा में लगाकर उसकी साधना में विघ्न नहीं डालना चाहिए। उसने बताया कि एक तो उसे पता तक नहीं कि यह साधक किस जाति का है? और दूसरे यदि दलित जाति वालों पर रोक लगायी जाती तो इसी शिविर में दलित वर्ग के धर्मसेवक हैं, जो परोसने का काम कर ही रहे हैं। युवक को भी सारी बात समझ में आ गयी और वह प्रसन्नचित्त साधना में लग गया। सचमुच महावीर महाराज जाति-पांति का कोई भेदभाव करे, यह असंभव था। उसे तो कर्तव्यनिष्ठ हो कर अपने काम में लगे रहने का ही अदम्य उत्साह बना रहता था।

महावीर और उसके साथियों की कर्मठता और कर्तव्य-परायणता का एक अद्भुत उदाहरण तब देखने को मिला, जब १००-१५० साधक-साधिकाओं का एक दल ८-१० दिनों की तीर्थ-यात्रा पर निकला। तीर्थ-यात्रा क्या थी, चलता-फिरता शिविर ही था। शिविरार्थियों के लिए रेल के दो डिब्बे रिजर्व थे और उनके साथ ही लगा हुआ भोजन बनाने का एक डिब्बा जुड़ा था। यह पिकनिक करते हुए सैलानी पर्यटकों की अथवा गपशप लगाने वाले सामान्य तीर्थ-यात्रियों की यात्रा नहीं थी, बल्कि गंभीर विपश्यी साधकों की ध्यानमयी साधना-यात्रा थी। उन्हें समय पर आनापान, समय पर विपश्यना दी गयी थी। ध्यान के समय ध्यान और विश्राम के समय विश्राम करते थे। शिविरों की भांति ही भोजन का प्रबंध था। यात्रा के दौरान भी और जहां कहीं पड़ाव लगता था वहां भी। यद्यपि भोजन निश्चित समय पर नहीं मिल पाता था। किसी बड़े स्टेशन पर गाड़ी के रुकने पर ही भोजनयान से इन डिब्बों में भोजन पहुँचाया जाता था। पर महावीर महाराज अपनी ओर से समय पर भोजन बना ही देता था। रेलगाड़ी की यात्रा बीच-बीच में टूटती थी। तीनों डिब्बे किसी स्टेशन की यार्ड में लगा दिए जाते थे और सारे साधक बसों से आगे की यात्रा पूरी करके एक, दो या तीन दिनों में लौट कर आते थे और फिर रेल की यात्रा आरंभ हो जाती थी। बसों की इस यात्रा में रसोई बनाने वालों को अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। पड़ाव बदलते रहते थे। दो रात एक दिन श्रावस्ती, तो एक रात गोरखपुर, एक रात और एक दिन कुशीनगर। यों यह काफला पड़ाव बदलते हुए चलता। जहां पहुँचते वहीं महावीर और उसके साथी भोजन बनाने के काम में लग जाते। शिविरार्थी टूटी-फूटी सड़कों की लंबी बस-यात्रा करके थके-मांदे जिस पड़ाव पर पहुँचते, वहीं उन्हें शीघ्र से शीघ्र कुछ आहार देना पड़ता। महावीर और उसके साथी भी उन्हीं बसों में साथ-साथ यात्रा कर रहे होते। अगले पड़ाव पर पहले से तो पहुँच नहीं पाते थे। ऐसी विषम स्थिति में धीरज और स्फूर्ति के साथ लोगों के लिए यथोचित आहार बना कर परोसना उत्कट पुरुषार्थ का ही काम होता था। ऐसी कठिन श्रमसाध्य परिस्थितियों में भी किसी ने उसके माथे पर शिकन नहीं देखी।

आखिर क्या कारण था, जिससे प्रभावित होकर महावीर महाराज ऐसी लगन, निष्ठा, कर्तव्य-परायणता तथा अदम्य उत्साह से इस सेवा में लगा रहा? यह सच है कि वह अपने काम के लिए वेतन लेता था क्योंकि उसे अपने भरे-पुरे परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता था और उसके पास आमदनी का और कोई साधन नहीं था। लेकिन इस प्रकार जी-जान लगा कर सेवा करने वाले वेतनभोगी व्यक्ति बहुत कम ही देखने में आते हैं। उसे वेतन भी जितनी मिलती, उससे कहीं अधिक वह बाहर आसानी से कमा सकता था। वह एक कुशल रसोइया ही नहीं, प्रवीण हलवाई भी था। उसकी मिठाई, नमकीन और चाय की अपनी दूकान थी, जिसे उसने इस सेवा में लगने पर बंद कर दी। इसके अतिरिक्त विवाह-शादियों के दिनों में उसकी बड़ी मांग रहती थी। किसी एक विवाह का काम भी हाथ में लेकर वह ३-४ महीनों की वेतन जितना पारिश्रमिक पा लेता था और साल भर में उसे इस प्रकार के कई विवाहों का काम आसानी से मिल सकता था। परंतु यह सब छोड़ कर वह धर्मसेवा में लग गया। आखिर इसका क्या कारण था?

उसने पहले शिविर में ही सेवा दे कर देख लिया कि विपश्यना विद्या के प्रशिक्षण का यह अभियान कितना निर्दोष है! कितना सर्वहितकारी है! और कितना आशुफलदायी है! शिविरों में साधकों को प्राप्त होते हुए लाभ वह प्रत्यक्ष देखता था। कुछ समय के बाद वह स्वयं भी शिविर में शामिल हुआ और उससे लाभान्वित हुआ। आगे जा कर उसने अपने परिवार के लोगों को भी शिविर में बैठाया। यों सेवा में लगे हुए उसने स्वयं भी अनेक शिविर किए। एक महीने का दीर्घ शिविर भी किया। विपश्यना का धर्मरस स्वयं चख लेने के कारण तथा इतने लोगों को प्रत्यक्ष लाभान्वित होते हुए देखने के कारण उसके मन में साधकों की सेवा का जो धर्म-संवेग जागा, वह अपूर्व था। वह बार-बार कहता था कि इस तपोभूमि के पावन वातावरण में रहते हुए साधकों की सेवा करने से अच्छी आजीविका और क्या हो सकती है?

जितनी सद्भावना से वह साधकों की सेवा करता रहा उतनी ही निष्ठा से स्वयं विपश्यना साधना करता रहा। इसी कारण पिछले दिनों पेट में कैंसर की ग्रंथि का रोग हो जाने पर भी उस असह्य पीड़ा को धर्म-धैर्यपूर्वक सहन करते हुए, सजग, सचेत, निर्भय और निराकुल अवस्था में उसने अपने प्राण छोड़े। मृत्यु के समय और

तत्पश्चात भी उसके चेहरे पर शांति और कांति झलक रही थी। उसकी सद्गति में भला किसी को क्या संदेह हो सकता है?

भारत में २००० वर्षों से विलुप्त हुई विपश्यना साधना का प्रथम शिविर १९६९ की जुलाई के प्रथम सप्ताह में लगा। उसमें महावीर महाराज ने सेवा देनी आरंभ की और १९९४ के जून महीने के अंत में इस सेवा में लगे रहते हुए ही उसने अपने प्राण छोड़े। इन २५ वर्षों में ही भगवती विपश्यना विद्या का भारत में पुनरागमन हुआ और प्रतिष्ठापन हुआ। भारत में विपश्यना के पुनर्स्थापन का २५ वर्षों का यह प्रथम दौर अपना एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। महावीर महाराज ने इसमें जो योगदान दिया, वह भावी पीढ़ियों को याद रहेगा। वह अपनी इस अनमोल धर्मसेवा के बल पर नितांत भवमुक्त अवस्था प्राप्त करे, यही कल्याण कामना है।

**कल्याण मित्र,**
**स. ना. गो.**

## साधकों के उद्गार

दिल्ली के प्रसिद्ध पत्रकार और यशस्वी लेखक श्री यशपाल जैन लिखते हैं, ...

"पिछले दिनों किरण बेदी से प्रत्यक्ष संपर्क हुआ। तिहाड़ कारावास में उन्होंने बंदियों की मानसिकता और व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए जो कुछ किया, उससे मेरे मन में उनके प्रति विशेष आकर्षण उत्पन्न हुआ। मैं उनके कार्यालय में जा कर उनसे मिला। लंबी बातचीत हुई। उस बातचीत से मेरा मन और भी प्रभावित हुआ। इसी बीच एक बौद्ध भिक्षुणी कात्सुबहन, जिन्हें मैं अनेक वर्षों से जानता हूं और जिनसे राजघाट पर रोज भेंट होती है, किरण बेदी के क्रांतिकारीकदम से उनकी ओर आकर्षित हुइर् और मेरे संकेत पर कारावास के बंदियों को एक हजार गांधी डायरियां देने को तैयार हो गइर्। आप को पता ही होगा कि यह गांधीजी का सवा-सौवां जयंती वर्ष है। मैंने किरण से संपर्क किया और यह निश्चय हुआ कि हम लोग वहां जा कर स्वयं बंदियों को डायरियां भेंट कर दें। कात्सुबहन के साथ मैं वहां गया। किरण हमें कारावास में ले गयी। बाहर गांधीजी और लालबहादुर शास्त्री के चित्र देख कर जहां प्रसन्नता हुई, वहां अंदर प्रवेश करके विपश्यना के चमत्कार को देखने का अवसर मिला। हम जेल नं. ४ में थे, जहां आपने कुछ दिन पहले एक शिविर का आयोजन किया था। लगभग ४५० बंदी सामने थे। किरण ने वहां पहुँचते ही संकल्प किया कि डायरियां विपश्यी बंदियों को ही दी जायेंगी। उपस्थित सारे बंदी वे थे जो आप के शिविर में सम्मिलित हुए थे। किरण ने बंदियों को संबोधित करने के लिए मुझसे अनुरोध किया। मैंने विपश्यना के विषय में अपने अनुभव सुनाये और उस ध्यान-पद्धति की महिमा से अवगत कराया। मैं यह देख कर मुग्ध रह गया कि बंदीगृह आश्रम के रूप में परिवर्तित हो गया है। विपश्यियों ने धूम्रपान करना छोड़ दिया है और उनमें विशेष प्रेमभाव उत्पन्न हुआ है। किरण ने प्रतिदिन प्रातः ७:४५ से ८:४५ एक घंटा नियमित विपश्यना करने का नियम बनाया है और उसके लिए स्थान निर्धारित किया है। सारा वातावरण विस्मयकारी था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि अपराधियों को कोई इस प्रकार नई दिशा दे सकता है और वे उस दिशा और दशा को ग्रहण कर सकते हैं।

कात्सुबहन ने कुछ बंदियों को डायरियां भेंट कीं, जिन्हें उन बंधुओं ने बड़े कृतज्ञभाव से ग्रहण किया।

समारोह के बाद किरण उस स्थान को दिखाने ले गइर्, जहां आपने एक हजार कैदियों को विपश्यना की भागवती शिक्षा दी थी। उसके साथ ही विपश्यना हॉल देखा, जहां अनेक बंदी बड़ी भावना से आपका विडियो प्रवचन सुन रहे थे। वहां हम लोग कुछ देर बैठे। हॉल में पूर्ण शांति थी। पवित्रता थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह स्थान गहरे स्पंदनों से भरा है। मन एकदम सिमट कर भीतर चला गया।

जो प्रक्रिया वहां आरंभ हुई है, उसे आगे बढ़ाने के लिए हम लोग प्रयत्नशील हैं। कितना प्रभाव डाला है विपश्यना ने! अनेक बंदी उसके शिविरों में शामिल होने के लिए उत्सुक हैं। यदि यही स्थिति रही तो तिहाड़ बंदीवास सच्चे अर्थों में आश्रम बन जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।"

## बच्चों के शिविर

मुंबई के **श्री अमुलख अमीचंद विविधलक्षी विद्यालय** में ४ से १५ जुलाई, १९९४ तक इसके कक्षा ५ से १० तक के सभी १३६७ बच्चों के लिए आयोजित नौ एक दिवसीय आनापान शिविर सफलतापूर्वक संपन्न हुए। शिविरों के दौरान शाला के अधिकतम शिक्षक भी उपस्थित रहे। शिविर का समय विद्यालय के समयानुसार दोपहर १२.३० से सायं ५.१५ तक रखा गया था। शिविर में बच्चों ने बड़ी समझदारी, गंभीरता और अनुशासन से काम किया और लाभान्वित हुए। इन शिविरों का संचालन ९ कनिष्ठ सहायक आचार्यों ने किया और १९ महिला तथा १३ पुरुष काउन्सलर्स (पुराने साधकों) ने सेवा दी।

मुंबई की ही एक अन्य शाला **नाणावटी हाईस्कूल** में भी कक्षा १ से ९ वीं तक के सभी विद्यार्थियों के लिए इसी प्रकार के आनापान शिविरों का आयोजन किया गया, जिनसे कुल लगभग ६०० बच्चों ने लाभ उठाया था। वहां शिविर का समय प्रातः ११ से सायं ५ बजे तक रहा, जबकि पहली से चौथी कक्षा के बच्चों के लिए इसका आधा समय पर्याप्त समझा गया।

परिचर्चा-सत्रों (काउन्सलिंगसेसन्स) में आनापान साधना का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष बच्चों को स्पष्ट कराया गया, जिसमें बच्चों ने बड़े आनंद और उत्साह से भाग लिया।

दोनों शालाओं की ओर से बहुत अच्छा सहयोग मिला। शाला में शिविर लगाने की प्राथमिक शर्त के अनुसार दोनों शालाओं में प्रतिदिन प्रातः दस मिनट बच्चों को आनापान का अभ्यास कराया जा रहा है। यह निर्णय निश्चय ही बच्चों की प्रगति में सहायक होगा।

वार्षिक अधिवेशन में पू. गुरुजी ने कहा था, "... बच्चों के जो शिविर हैं उन्हें बढ़ावा देना बहुत आवश्यक है। इस देश की और सारे विश्व की अगली पीढ़ी एक ऐसी मानवता तैयार करे जो सारे विश्व में सुख-शांति का वातावरण तैयार कर सके। इस छोटी सी उम्र में ही धर्म के बीज पड़ें, इस ओर प्रयत्नशील होना चाहिए।" अब इन शिविरों की सफलता से प्रेरित होकर मुंबई की कुछ एक अन्य शालाओं ने भी ऐसे शिविरों के लिए उत्सुकता दिखायी है। यह कितनी कल्याणकारिणी बात है कि आने वाली भावी पीढ़ी को बचपन से ही शुद्ध धर्म की समझ होगी।